



Research Article

वन संरक्षण में धार्मिक विश्वासों, लोक-परम्पराओं एवं सामुदायिक भागीदारी की भूमिका

सरोज गोठवाल

शोधार्थी, भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author: * सरोज गोठवाल

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.23465598>

सारांश

वन संरक्षण केवल प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन का विषय नहीं है, बल्कि इसका संबंध समाज की सांस्कृतिक मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं, लोक-परम्पराओं और सामुदायिक जीवन से भी है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पवित्र उपवनों, देववनों, ओरणों, वृक्ष-पूजा, जलस्रोतों की रक्षा तथा स्थानीय संसाधनों के उपयोग से जुड़े नियमों ने अनेक स्थानों पर वनस्पति और जैव विविधता के संरक्षण में योगदान दिया है। राजस्थान में ओरण परंपरा और विश्वोई समुदाय की प्रकृति-संरक्षण संबंधी मान्यताएँ इस संबंध के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य धार्मिक विश्वासों, लोक-परम्पराओं तथा सामुदायिक भागीदारी की वन संरक्षण में भूमिका का विश्लेषण करना, उनकी वर्तमान प्रासंगिकता को समझना तथा आधुनिक वन प्रबंधन में इनके समावेश की संभावनाओं पर विचार करना है। अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है तथा द्वितीयक स्रोतों, नीतिगत दस्तावेजों और ऐतिहासिक उदाहरणों पर आधारित है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ संरक्षण के लिए सामाजिक प्रेरणा उत्पन्न कर सकती हैं, जबकि समुदाय की भागीदारी संरक्षण को स्थानीय आवश्यकताओं से जोड़ती है। तथापि, इन व्यवस्थाओं की प्रभावशीलता के लिए वैज्ञानिक मूल्यांकन, समावेशी निर्णय प्रक्रिया, कानूनी समर्थन और आजीविका संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान रखना अनिवार्य है।

Manuscript Information

- ISSN No: 3139-6313
- Received: 13-08-2026
- Accepted: 17-10-2026
- Published: 19-10-2026
- IJCRP:1(5); 2026: 205-208
- ©2026, All Rights Reserved
- Plagiarism Checked: Yes
- Peer Review Process: Yes

How to Cite this Article

गोठवाल स. वन संरक्षण में धार्मिक विश्वासों, लोक-परम्पराओं एवं सामुदायिक भागीदारी की भूमिका. Int. J. Creative Res. Publ. 2026;1(5): 205-208.

Access this Article Online



www.jcrp.in

मुख्य शब्द : वन संरक्षण, धार्मिक विश्वास, लोक-परम्पराएँ, सामुदायिक भागीदारी, पवित्र उपवन, ओरण, विश्वोई समुदाय, जैव विविधता।

1. प्रस्तावना

वन पृथ्वी की पारिस्थितिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण घटक हैं। वे जैव विविधता को आश्रय देते हैं, कार्बन का भंडारण करते हैं, मिट्टी के कटाव को कम करने में सहायता करते हैं तथा अनेक समुदायों की आजीविका का आधार हैं। इसके बावजूद वनों पर कृषि विस्तार, खनन, अवसंरचना निर्माण, अनियंत्रित संसाधन दोहन और जलवायु परिवर्तन का दबाव बना हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में वन संरक्षण को केवल प्रशासनिक नियमों और वृक्षारोपण तक सीमित रखना पर्याप्त नहीं है। सामाजिक व्यवहार, स्थानीय ज्ञान और सामुदायिक उत्तरदायित्व भी संरक्षण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय समाज में प्रकृति के साथ संबंध अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक रूपों में व्यक्त हुआ है। वृक्षों को पवित्र मानना, किसी वनखंड को ग्राम-देवता से जोड़ना, जलस्रोतों के आसपास की वनस्पति को सुरक्षित रखना तथा कुछ जीवों के शिकार पर सामाजिक रोक लगाना इसके उदाहरण हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में इन प्रथाओं के स्वरूप भिन्न रहे हैं। इनका प्रभाव भी स्थानीय पर्यावरण, सामाजिक संरचना और संसाधनों के उपयोग पर निर्भर करता रहा है। वर्तमान संदर्भ में इन परम्पराओं का महत्व इस बात में है कि वे प्रकृति संरक्षण को समुदाय की पहचान, नैतिकता और सामूहिक जिम्मेदारी से जोड़ सकती हैं। हालांकि, सभी धार्मिक या लोक-परम्पराएँ स्वतः पर्यावरण-अनुकूल हों, ऐसा मानना उचित नहीं होगा। इसलिए उनका मूल्यांकन प्रमाण, स्थानीय अनुभव और समावेशी दृष्टिकोण के आधार पर किया जाना चाहिए।

2. अध्ययन के उद्देश्य

वन संरक्षण से जुड़े धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक मान्यताओं की भूमिका का अध्ययन करना।
लोक-परम्पराओं, पवित्र उपवनों और स्थानीय संसाधन नियमों के संरक्षण संबंधी महत्व का विश्लेषण करना।
वन संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी के स्वरूप और उपयोगिता को समझना।
राजस्थान की ओरण परंपरा तथा विश्वोई समुदाय के उदाहरणों का विश्लेषण करना।
वर्तमान वन प्रबंधन में पारंपरिक ज्ञान और सामुदायिक सहभागिता के समावेश हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध प्रश्न

धार्मिक विश्वास और लोक-परम्पराएँ वन संरक्षण को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?
सामुदायिक भागीदारी वन संरक्षण की निरंतरता और प्रभावशीलता में क्या योगदान देती है?
इन परम्पराओं को आधुनिक वैज्ञानिक तथा कानूनी संरक्षण व्यवस्थाओं से कैसे जोड़ा जा सकता है?
पारंपरिक संरक्षण व्यवस्थाओं की प्रमुख सीमाएँ और चुनौतियाँ क्या हैं?

4. शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें द्वितीयक स्रोतों, पर्यावरण संरक्षण से संबंधित सरकारी दस्तावेजों, जैव विविधता पर उपलब्ध साहित्य, सामुदायिक संरक्षण के ऐतिहासिक

उदाहरणों और प्रासंगिक कानूनी प्रावधानों के आधार पर विषय का विश्लेषण किया गया है। राजस्थान की ओरण परंपरा और विश्वोई समुदाय को विशेष संदर्भ के रूप में लिया गया है। इसमें स्वतंत्र प्राथमिक सर्वेक्षण नहीं किया गया है; इसलिए निष्कर्ष साहित्य और उपलब्ध दस्तावेजों की व्याख्या पर आधारित हैं।

5. वन संरक्षण में धार्मिक विश्वासों की भूमिका

5.1 वृक्षों के प्रति पवित्रता और सम्मान

भारतीय समाज में पीपल, बरगद, नीम, तुलसी और खेजड़ी जैसे वृक्ष विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक, औषधीय तथा उपयोगितावादी संदर्भों में महत्व रखते हैं। कुछ समुदायों में वृक्षों को पवित्र मानने से उनकी कटाई के प्रति संकोच या सामाजिक रोक विकसित हुई। ऐसी मान्यताएँ संरक्षण के विचार को दैनिक जीवन और पीढ़ीगत परम्परा से जोड़ सकती हैं।

धार्मिक सम्मान का संरक्षण पर प्रभाव हर स्थान पर एक जैसा नहीं होता। किसी वृक्ष को पवित्र मानना अपने आप में पूरे वन तंत्र की रक्षा की गारंटी नहीं है। फिर भी जब ऐसी मान्यताएँ स्थानीय नियमों, शिक्षा और सामुदायिक निगरानी के साथ जुड़ती हैं, तब वे संरक्षण के लिए उपयोगी सामाजिक प्रेरणा बन सकती हैं।

5.2 पवित्र उपवन और देववन

पवित्र उपवन ऐसे वनखंड या वृक्ष समूह होते हैं जिन्हें देवता, ग्राम-देवता या पूर्वजों से संबंधित मानकर सुरक्षित रखा जाता है। विभिन्न क्षेत्रों में इनके लिए देववन, देवराई, सरना और अन्य स्थानीय नाम प्रचलित हैं। राजस्थान में ओरण परंपरा विशेष महत्व रखती है। इन क्षेत्रों में वृक्षों की कटाई, शिकार या अन्य संसाधन उपयोग पर स्थानीय रीति के अनुसार प्रतिबंध या नियंत्रण हो सकता है।

पवित्र उपवन स्थानीय वनस्पतियों, पक्षियों और छोटे जीवों के लिए आश्रय प्रदान कर सकते हैं। वे सांस्कृतिक विरासत और सामुदायिक स्मृति के केंद्र भी होते हैं। आधुनिक संरक्षण योजनाओं में इनकी सीमाओं, जैव विविधता, भूमि उपयोग और प्रचलित नियमों का दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए।

5.3 जीव-जंतुओं के प्रति करुणा

भारतीय धार्मिक और लोक परम्पराओं में अनेक जीव-जंतुओं को विशेष सांस्कृतिक महत्व दिया गया है। कुछ समुदायों में विशिष्ट प्रजातियों का शिकार न करना या उनके आवासों को सुरक्षित रखना सामाजिक मूल्य का हिस्सा रहा है। इससे वन्यजीवों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ सकती है। हालांकि, प्रजातियों की सुरक्षा के लिए केवल मान्यताएँ पर्याप्त नहीं हैं; आवास संरक्षण, अवैध शिकार पर नियंत्रण और वैज्ञानिक निगरानी भी आवश्यक हैं।

6. लोक-परम्पराओं का योगदान

6.1 मौसमी नियम और संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग

स्थानीय समाजों में लकड़ी, चारा, फल, बीज और औषधीय पौधों के संग्रह से संबंधित परम्परागत नियम विकसित हुए हैं। कुछ क्षेत्रों में मौसम, प्रजाति या स्थान के आधार पर उपयोग की सीमाएँ तय की जाती थीं। ऐसी प्रथाएँ संसाधनों के पुनर्जनन और स्थानीय आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाने में सहायक हो सकती हैं। इन नियमों की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे

पारिस्थितिक दृष्टि से उपयुक्त हों और समुदाय के सभी संबंधित समूहों के लिए न्यायसंगत हों।

6.2 जलस्रोत, चरागाह और वनस्पति

तालाबों, कुओं, बावड़ियों और अन्य जलस्रोतों से जुड़े सांस्कृतिक नियमों ने कई क्षेत्रों में सामूहिक देखभाल की परंपरा को प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार चरागाहों और सामुदायिक भूमि का नियमन पशुपालन तथा स्थानीय पारिस्थितिकी के लिए महत्वपूर्ण रहा है। जलस्रोतों के आसपास उपयुक्त वनस्पति मिट्टी के कटाव को कम करने और आवास को सहारा देने में मदद कर सकती है। वर्तमान में जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन, तालाब पुनर्जीवन और स्थानीय वनस्पति संरक्षण को एकीकृत दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

6.3 लोककथाएँ, त्योहार और पीढ़ीगत ज्ञान

लोकगीत, कथाएँ, त्योहार और सामुदायिक आयोजन पर्यावरण संबंधी ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के माध्यम हो सकते हैं। वृक्षारोपण, जलस्रोतों की सफाई, स्थानीय प्रजातियों की पहचान और वन्यजीवों के प्रति संवेदनशीलता जैसे विषय इन सांस्कृतिक माध्यमों से जनसामान्य तक पहुँचाए जा सकते हैं। आधुनिक पर्यावरण शिक्षा में लोक परम्पराओं को वैज्ञानिक जानकारी के साथ जोड़ना उपयोगी होगा।

7. सामुदायिक भागीदारी की भूमिका

7.1 स्थानीय निगरानी और सामूहिक उत्तरदायित्व

वनो के निकट रहने वाले समुदाय स्थानीय भूगोल, मौसम, वनस्पतियों और संसाधनों के उपयोग से परिचित होते हैं। उनकी भागीदारी से अवैध कटाई, आग, चराई के दबाव और वन क्षरण से जुड़ी समस्याओं की पहचान समय रहते हो सकती है। समुदाय आधारित निगरानी तभी प्रभावी होती है जब स्थानीय लोगों को स्पष्ट भूमिका, आवश्यक जानकारी और संस्थागत सहयोग मिले।

7.2 आजीविका और संरक्षण में संतुलन

वन अनेक समुदायों को चारा, ईंधन, खाद्य पदार्थ, औषधीय सामग्री और आय के साधन प्रदान करते हैं। यदि संरक्षण योजनाएँ स्थानीय आजीविका की आवश्यकताओं की अनदेखी करती हैं, तो उनके प्रति असंतोष पैदा हो सकता है। इसलिए संरक्षण कार्यक्रमों में वैध संसाधन उपयोग, वैकल्पिक आजीविका, लाभों का न्यायसंगत वितरण और स्थानीय अधिकारों का सम्मान शामिल होना चाहिए।

7.3 ग्रामसभा और स्थानीय संस्थाएँ

ग्रामसभा, स्थानीय निकाय, वन विभाग, वन संरक्षण समितियाँ और

सामुदायिक संस्थाएँ मिलकर संरक्षण योजनाएँ तैयार कर सकती हैं। भारत का वन अधिकार अधिनियम, 2006 पात्र वनवासी अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वनवासियों के अधिकारों को मान्यता देता है तथा निर्धारित प्रावधानों के अंतर्गत सामुदायिक वन संसाधनों की रक्षा, संरक्षण और प्रबंधन में ग्रामसभा की भूमिका को महत्व देता है। कानून के प्रावधानों और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप सहभागिता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

8. राजस्थान के उदाहरण: ओरण और विश्वोई समुदाय

राजस्थान के अनेक क्षेत्रों में ओरण सामुदायिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व वाले स्थल हैं। कई ओरण स्थानीय देवस्थानों से जुड़े होते हैं और परंपरागत नियमों के माध्यम से संरक्षित रहे हैं। इनके संरक्षण से स्थानीय वनस्पतियों, जीव-जंतुओं और सामुदायिक सांस्कृतिक पहचान को सहारा मिल सकता है। बदलते भूमि उपयोग, निर्माण गतिविधियों और संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण इनके दस्तावेजीकरण और संरक्षण की आवश्यकता है।

विश्वोई समुदाय की परंपरा प्रकृति और जीव-जंतुओं के संरक्षण के लिए उल्लेखनीय है। सन् 1730 में खेजड़ली गाँव में अमृता देवी विश्वोई और अन्य ग्रामीणों द्वारा खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिए दिया गया बलिदान भारतीय पर्यावरणीय इतिहास में सामुदायिक प्रतिबद्धता का प्रसिद्ध उदाहरण है। इस घटना से यह संदेश मिलता है कि प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व का रूप ले सकती है।

इन उदाहरणों को व्यापक नीति में शामिल करते समय स्थानीय समुदायों की सहमति, भूमि और वन अधिकारों, जैव विविधता के वैज्ञानिक आकलन तथा आजीविका संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। किसी एक उदाहरण के आधार पर सभी पारंपरिक व्यवस्थाओं को समान रूप से प्रभावी मानना उचित नहीं है।

9. धार्मिक विश्वास, लोक-परम्पराएँ और सामुदायिक भागीदारी: परस्पर संबंध

धार्मिक विश्वास संरक्षण के लिए नैतिक प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं; लोक-परम्पराएँ उस प्रेरणा को व्यवहारगत नियमों और सामूहिक स्मृति में बदल सकती हैं; जबकि सामुदायिक भागीदारी उन नियमों के क्रियान्वयन, निगरानी और समयानुकूल संशोधन में सहायता करती है। जब ये तीनों पक्ष वैज्ञानिक जानकारी और कानूनी समर्थन से जुड़ते हैं, तब संरक्षण की अधिक समन्वित व्यवस्था विकसित हो सकती है।

घटक	संरक्षण में संभावित योगदान	आधुनिक उपयोग
धार्मिक विश्वास	प्रकृति के प्रति सम्मान और नैतिक प्रेरणा	पर्यावरण शिक्षा, संरक्षण संकल्प और जन-जागरूकता
लोक-परम्पराएँ	पीढ़ीगत ज्ञान तथा स्थानीय संसाधन नियम	स्थानीय प्रथाओं का दस्तावेजीकरण और उपयुक्त नियमों का पुनरावलोकन
सामुदायिक भागीदारी	निगरानी, सामूहिक निर्णय और जवाबदेही	ग्रामसभा, संयुक्त योजना और समुदाय आधारित संरक्षण
विज्ञान एवं कानून	प्रभाव का मूल्यांकन और अधिकारों का संरक्षण	जैव विविधता सर्वेक्षण, कानूनी समर्थन और दीर्घकालिक निगरानी

10. प्रमुख चुनौतियाँ और सीमाएँ

परंपरागत नियम सभी क्षेत्रों में समान नहीं हैं; उनका प्रभाव स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

कुछ सामुदायिक व्यवस्थाओं में महिलाओं, वंचित समूहों या संसाधन-निर्भर परिवारों की भागीदारी सीमित हो सकती है।

भूमि उपयोग परिवर्तन, खनन, अवसंरचना विकास और बाजार दबाव पारंपरिक संरक्षण क्षेत्रों को प्रभावित कर सकते हैं।

धार्मिक महत्त्व को जैव विविधता की गुणवत्ता का स्वतः प्रमाण नहीं माना जा सकता; वैज्ञानिक आकलन आवश्यक है।

पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण समुदायों की सहमति, सांस्कृतिक अधिकारों और लाभ-साझेदारी के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।

11. सुझाव

ओरण, देववन और अन्य पवित्र उपवनों की सीमाओं, वनस्पति, भूमि उपयोग और सामुदायिक नियमों का अभिलेखीकरण किया जाए।

वन संरक्षण समितियों और ग्रामसभाओं में महिलाओं, युवाओं तथा वन-आश्रित समूहों की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

स्थानीय परम्पराओं को वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर परखा जाए और उपयोगी प्रथाओं को संरक्षण योजनाओं में शामिल किया जाए।

स्थानीय प्रजातियों और प्राकृतिक पुनर्जनन को प्राथमिकता दी जाए; केवल वृक्षारोपण की संख्या को सफलता का मानक न बनाया जाए।

लोककथाओं, त्योहारों और ऐतिहासिक उदाहरणों को पर्यावरण शिक्षा तथा जन-जागरूकता कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।

सामुदायिक संरक्षण के साथ आजीविका, वन अधिकार और संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग को भी महत्त्व दिया जाए।

वन विभाग, स्थानीय संस्थाओं, शोधकर्ताओं और समुदायों के बीच नियमित संवाद तथा संयुक्त निगरानी की व्यवस्था विकसित की जाए।

संरक्षण के परिणामों का आकलन जैव विविधता, प्राकृतिक पुनर्जनन, वनावरण, स्थानीय सहभागिता और आजीविका पर प्रभाव के आधार पर किया जाए।

12. निष्कर्ष

वन संरक्षण में धार्मिक विश्वासों, लोक-परम्पराओं और सामुदायिक भागीदारी की भूमिका परस्पर जुड़ी हुई है। धार्मिक मान्यताएँ प्रकृति के प्रति सम्मान और नैतिक प्रतिबद्धता उत्पन्न कर सकती हैं। लोक-परम्पराएँ इस प्रतिबद्धता को स्थानीय नियमों, सामूहिक स्मृति और पीढ़ीगत ज्ञान के रूप में आगे बढ़ाती हैं। सामुदायिक भागीदारी संरक्षण के निर्णयों, निगरानी और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को स्थानीय आवश्यकताओं से जोड़ती है। पवित्र उपवन, राजस्थान की ओरण परंपरा और विश्वीय समुदाय का इतिहास इस संबंध को समझने के उपयोगी उदाहरण हैं।

फिर भी इन व्यवस्थाओं को अतीत की आदर्श छवि के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। उनकी प्रभावशीलता स्थानीय सामाजिक संबंधों, पारिस्थितिक परिस्थितियों, अधिकारों और संस्थागत समर्थन पर निर्भर करती है। आधुनिक वन संरक्षण के लिए वैज्ञानिक अध्ययन, कानून, तकनीकी निगरानी और पारदर्शी प्रबंधन आवश्यक हैं। साथ ही, यदि स्थानीय समुदायों को निर्णय प्रक्रिया से अलग रखा जाता है, तो संरक्षण योजनाओं की सामाजिक स्वीकार्यता कमजोर पड़ सकती है।

अतः प्रभावी वन संरक्षण के लिए धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रेरणा, लोक-ज्ञान, समुदाय की सक्रिय भागीदारी, वैज्ञानिक मूल्यांकन और कानूनी संरक्षण का संतुलित समन्वय आवश्यक है। इसका उद्देश्य पुरानी व्यवस्थाओं को बिना परिवर्तन दोहराना नहीं, बल्कि उनके उपयोगी सिद्धांतों को वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करना होना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. Government of India, Ministry of Tribal Affairs. The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006. 2006. Available from: <https://tribal.nic.in/FRA.aspx>
2. Convention on Biological Diversity. Article 8(j): Traditional knowledge, innovations and practices. Available from: <https://www.cbd.int/traditional/default.shtml>
3. Food and Agriculture Organization of the United Nations. Sacred groves in India. Available from: <https://www.fao.org/4/XII/0509-A1.htm>
4. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India. Sacred groves protection Press Information Bureau; 2024 Feb 8. Available from: <https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2004012&lang=2®=48>
5. Rajasthan Forest Department. Sacred groves of Rajasthan: documentation and assessment of biological diversity in some of them for improved management and people livelihoods. Available from: <https://forest.rajasthan.gov.in/content/raj/forest/en/aboutus/departamental-wings/forest-development.html>
6. Thaplyal V, Chauhan S. Sacred groves: the ancestral wisdom of forest conservation. Special issue on International Year of Forests 2011. 2011. Available from: <https://gbpihedenvi.nic.in/ENVIS%20Book.pdf>
7. Government of India, Ministry of Environment, Forest and Climate Change. Forest (Conservation) Act, 1980. 1980. Available from: <https://www.moef.gov.in/forest-conservation>

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-Commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

About the author



सरोज गोठवाल भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान में शोधार्थी हैं। उनकी शैक्षणिक रुचि भूगोल, सामाजिक एवं आर्थिक विकास, क्षेत्रीय अध्ययन, पर्यावरणीय परिवर्तन तथा सतत विकास से संबंधित विषयों में है। उनका शोध भौगोलिक प्रक्रियाओं, सामाजिक संरचना और क्षेत्रीय विकास की चुनौतियों को समझने पर केंद्रित है।